श्रीमद्देवीभागवत[1] में शैवतत्त्व

श्रीमद्देवीभागवत का महत्त्व शाक्तों के लिये उसी प्रकार का है जिस प्रकार श्रीमद्भागवत का वैष्णवों के लिये। प्राचीन काल से ही शाक्त – भक्त इसे 'शाक्त – भागवत' या देवीभागवत कहते चले आ रहे हैं। इसे यद्यपि महापुराणों में नहीं गिना जाता तथापि शाक्तों के लिये इसका दर्जा किसी भी महापुराण से कम नहीं है। इस पुराण में देवी या शक्ति की ही गरिमा को मण्डित किया गया है। अर्थात् इस पुराण की प्रमुख उपास्या देवी या शक्ति हैं। इस पुराण में भगवान् शिव संबंधी प्रसंगो की अपेक्षाकृत थोड़ी चर्चा है। परन्तु जहाँ कहीं भी चर्चा है वहाँ भगवान् शिव को ही उच्चतम देव स्वीकार किया गया है।

भगवान् शिव का स्वरूप

किसी प्रसंग में वसिष्ठजी ने भगवान् शंकर की स्तुति में उन्हें कल्याणस्वरूप, मंगलकर्त्ता, जटाधारण करनेवाले, पार्वती को अर्द्धांग में धारण करनेवाले, कैलासवासी, चन्द्रमा को ललाट पर धारण करनेवाले, भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाले, भगवान्, नीलकण्ठ, शरणागतों का भय दूर करनेवाले, वृष को वाहन के रूप में प्रयोग करनेवाले, शरणागतवत्सल, सृष्टि, स्थिति एवं संहार के समय ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप धारण करनेवाले, वर देने में सदा तत्पर रहनेवाले तथा देवाधिदेव आदि कहा है।(दे. भा. माहा. अध्या. 3/33 – 37)

नमो नमः शिवायास्तु शंकराय कपर्दिने।
गिरिजार्द्धाङ्गदेहाय नमस्ते चंद्रमौलये।।
मृडाय सुखदात्रे ते नमः कैलासवासिने।
नीलकण्ठाय भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने।।
शिवाय शिवरूपाय प्रपन्नभयहारिणे।
नमो वृषभवाहाय शरण्याय परात्मने।।
ब्रह्मविष्ण्वीशरूपाय सर्गस्थितिलयेषु च।
नमो देवाधिदेवाय वरदाय पुरारये।।
यज्ञरूपाय यजतां फलदात्रे नमो नमः।
गंगाधराय सूर्येन्दुशिखिनेत्राय ते नमः। (श्रीमददे. भा. माहात्म्य अ. 3/33 – 37)

उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि संसार की सृष्टि, स्थिति तथा लय के मूल कारण भगवान् शिव ही हैं तथा वे ही त्रिदेवों के रूप में अपने आपको प्रकट करते हैं। इस प्रकार वे ही जगत् के

---

1. प्रस्तुत निबंध गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त 'श्रीमद्देवीभागवत' का चतुर्थसंस्करण तथा 'श्रीमद्देवीभागवतम्' जो रामतेज पाण्डेय द्वारा संपादित तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी द्वारा 1986 में प्रकाशित है, पर आधारित है।

मूलकारण तथा परमदेव सिद्ध होते हैं।

किसी प्रंसग में(जिसकी चर्चा इसी पुस्तक के द्वितीय भाग के लेख, 'लक्ष्मीजी का शिवपूजन' में है) लक्ष्मीजी ने भगवान् शिव की उपासना(देवताओं के वर्ष से) एक हजार वर्षतक की। तपस्या के समय उन्होंने भगवान् शिव के जिस रूप का ध्यान किया था वह इस प्रकार है – जिनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं; गौरी जिनके अर्द्धांग की शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका कपूर के समान गौर शरीर है, जिनका कण्ठ नीला है और तीन आँखें हैं, जो बाघाम्बर पहने और हाथी के चर्म की चादर ओढ़े हुए हैं, जिनके गले में नरमुण्डों की माला है, जो साँप का यज्ञोपवीत पहने हुए हैं, तथा जिनके मस्तकपर चन्द्रमा अलंकृत है।(दे. भा. स्क. 6/अध्याय 18/14 – 15)

पञ्चाननं दशभुजं गौरी देहार्धधारिणम्।
कर्पूरगौरदेहाभं नीलकंठं त्रिलोचनम्।।
व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम्।
कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम्।। (दे. भा. स्क. 6/18/14 – 15)

इस प्रकार हम भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की झलक इस पुराण में पाते हैं। निर्गुणरूप में वे सबके कारण हैं तथा सगुणरूप में कैलासवासी तथा उपरोक्त विशेषताओं से युक्त हैं।

शंखचूड से युद्ध करने के लिये पहुँचे हुए भगवान् शिव के गुणों को बताते हुए उन्हें भक्तों की मृत्यु को हरनेवाला, गौरीकान्त, सभी संपदाओं तथा तप के फलों को देनेवाला, आशुतोष, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाला, विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वम्भर(जगत् का पालन करनेवाला), संहारकारी, कारणों का कारण, नरक समुद्र से तारनेवाला, ज्ञान का बीज, सनातन तथा ज्ञान प्रदान करनेवाला कहा गया है।

भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोहरम्।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्।।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्।
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम्।।
विश्वम्भरं विश्ववरं विश्वसंहारकारकम्।
कारणं कारणानाम् च नरकार्णवतारणम्।।
ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम्। (दे. भा. 9/21/24 – 27)

इस पुराण में न केवल लक्ष्मीजी को अपितु भगवान् श्रीकृष्ण को भी(पुत्रप्राप्ति के लिये) भगवान् शिव की उपासना करते हुए दिखाया गया है। उपमन्यु से शैवी दीक्षा ले भगवान् श्रीकृष्ण ने शिव को प्रसन्न कर उनसे वरदान प्राप्त किया।(दे. भाग. स्क. 4/अ. 25/29 – 66)

पुत्र के लिये कठोर तपस्या करते हुए जब छः मास बीत गये तब भगवान् शिव ने कृष्णजी के समक्ष प्रकट हो उनसे वरदान माँगने के लिये कहा। उन्हें देख श्रीकृष्ण ने चरणों में प्रणामकर स्तुति

करनी प्रारंभ कर दी। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को देवदेव, जगन्नाथ, सभी प्राणियों के दु:खों का नाश करनेवाले, विश्वयोनि, देव-शत्रुओं का नाश करनेवाले, तीनों लोकों के जन्मदाता, नीलकंठ तथा शूल धारण करनेवाले इत्यादि कहा है।

देवदेव जगन्नाथ सर्वभूतार्तिनाशन।।
विश्वयोने सुरारिघ्न नमस्त्रैलोक्य कारक।
नीलकंठ नमस्तुभ्यं शूलिने ते नमोनमः।। (दे. भा. 4/25/39-40)

किसी प्रसंग में धर्मराज कहते हैं कि भगवान् शंकर के भक्तों से मेरे दूत इस प्रकार डरते हैं, जैसे गरुड़ से सर्प। मैं दूतों को शिवभक्तों के पास जाने से रोकता हूँ।(दे. भा. 9/36/19)

भीताः शिवोपासकेभ्यो वैनतेयादिवोरगा।
स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छंतं वारयाम्यहम्।। (दे. मा. 9/36/19)

उपरोक्त उद्धरणों से पता चलता है कि भगवान् शिव की गरिमा इतनी है कि उनकी उपासना लक्ष्मीजी तथा श्रीकृष्ण जैसे लोग करते हैं तथा जिनसे धर्मराज के दूत भी भय खाते हैं। पुनः भगवान् शिव को ज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा ज्ञान का अधिष्ठाता कहा गया है। उन्होंने ही मुक्ति को प्रकाशित करनेवाले सात्त्विक तन्त्र-शास्त्रों की रचना की है।(स्क. 9/अ. 12/पृ. 558, संक्षिप्त श्रीमददेवी. भा. गीताप्रेस)

त्रिदेवों की एकता

सूतजी देवीभागवत की कथा सुननेवालों की योग्यता बताते हुए कहते हैं कि "जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकर में भेद दृष्टि रखते हैं उन्हें कथा सुनने का अधिकार नहीं है।"(माहात्म्य अ. 5/41-42)

ब्रह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेद दर्शिनः।।
..... ये न ते योग्याः कथाश्रवे।। (दे. भा. माहात्य 5/41-42)

हम ऊपर वसिष्ठजी की स्तुति में देख चुके हैं कि एक ही परमतत्त्व भगवान् शिव सृष्टि, पालन तथा संहार के लिये तीन रूप(ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र) धारण करते हैं। अतः निष्कर्ष यह है कि तीनों देव तत्त्वतः एक ही हैं।

ऊपर के सन्दर्भों में हमने एक जगह लक्ष्मी द्वारा शिवोपासना की चर्चा की है। उसी प्रसंग में आगे बताया गया है कि लक्ष्मी की तपस्या से प्रसन्न हो भगवान् शिव वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। वे लक्ष्मी के समक्ष पहुँचकर उनसे पूछते हैं कि तुम तपस्या क्यों कर रही हो? क्योंकि तुम्हारे पतिदेव सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ हैं तथा अखिल लोक के अध्यक्ष हैं। ऐसे जगत्प्रभु वासुदेव को छोड़कर मेरी आराधना क्यों कर रही हो? पति की सेवा करना स्त्रियों का सनातन धर्म है, फिर नारायण तो सबके लिये निरन्तर पूज्य हैं। ऐसे देवेश्वर श्रीहरि को छोड़कर तुम मेरी उपासना क्यों कर रही हो?

उत्तर में लक्ष्मीजी ने तपस्या का कारण बताते हुए कहा कि "आपमें और श्रीहरि में कभी

किंचिन्मात्र भी भेद-भाव नहीं है। प्रभो! मैं पतिदेव के पास थी, तभी से मुझे यह रहस्य ज्ञात है। जो आप हैं, वही वे हैं और जो वे हैं, वही आप हैं-इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है। आप दोनों महानुभाव एक ही हैं-यह समझकर मैंने आपका चिन्तन किया है, अन्यथा आपकी सेवा करने से मैं दोष की भागिनी बन जाती।"

मयैतद्गिरिजाकांत ज्ञातं पत्युः पुरो हर।
यस्त्वं सोऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः।।
एकत्वं च मया ज्ञात्वा मया ते स्मरणं कृतम्।
अन्यथा मम दोषस्त्वामाश्रयंत्या भवेच्छिव।। (दे. मा. 6/18/31-32)

इस उत्तर को सुनकर पुनः भगवान् शिव लक्ष्मीजी से बोले- देवि! मैं और श्रीहरि बिल्कुल एक हैं-तुमको इस रहस्य का पता कैसे लगा? देवता, मुनि, ज्ञानी और वेदों के पारगामी पुरुष भी तर्क-वितर्क में पड़े रहकर इस एकत्व के रहस्य को नहीं समझ पाते हैं। मेरे बहुत से भक्त भगवान् विष्णु की और उनके भक्त मेरी निन्दा करने में सदा तत्पर रहते हैं। देवि! कलियुग में इस बात की बड़ी विशेषता रहेगी। समय के भेद से यह भेद-भाव बढ़ता चला जा रहा है। भद्रे! मुझमें और श्रीहरि में सम्यक् प्रकार से एकता है- यह भाव जानना प्रायः सबके लिये महान् कठिन है। फिर तुम कैसे जान गयी।

कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुन्दरि।
ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यं मे वद सिंधुजे।।
एकत्वं च न जानंति देवाश्च मुनयस्तथा।
ज्ञानिनो वेदतत्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल।।
मद्भक्ता वासुदेवस्य निंदका बहवस्तथा।
विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निंदापरायणाः।।
भवंति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः।
कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः।।
सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः। (दे. भा. 6/18/33-37)

उत्तर में लक्ष्मीजी ने कहना शुरू किया। एक समय की बात है-भगवान् विष्णु एकान्त में पद्मासन लगाये बैठे ध्यान कर रहे थे। जब वे यों तप कर रहे थे, तब उन्हें देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर बाद जब उनकी समाधि टूटी तो मैंने उनसे पूछा कि प्रभो! आप देवताओं के अध्यक्ष एवं जगत् के स्वामी हैं। आपको ही मैं सम्पूर्ण देवताओं में श्रेष्ठ मानती हूँ। फिर आप किसका ध्यान कर रहे हैं? यह प्रंसग मेरे मन को आश्चर्य में डाल रहा है, अतः आप मेरी इस मानसिक उलझन को दूर करने की कृपा करें।

तब भगवान् विष्णु मुझसे बोले-प्रिये! मैं हृदय में जिनका ध्यान कर रहा हूँ वे पार्वतीपति

भगवान् शंकर सबसे प्रधान माने जाते हैं। तुरंत प्रसन्न हो जाना उनका स्वाभाविक गुण है। उनके पराक्रम की कोई सीमा नहीं है। कभी तो ऐसा होता है कि त्रिपुरासुर का वध करनेवाले वे देवेश मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं उनका करता हूँ। उनके प्रिय प्राण मैं हूँ और मेरे प्रिय प्राण वे हैं। हम दोनों का चित्त परस्पर गुँथा हुआ है। अत: दोनों में किंचिन्मात्र भेद नहीं समझना चाहिये। जो भगवान् शंकर से द्वेष करते हैं, वे मेरे भक्त ही क्यों न हों, किन्तु नरक में जाना उनके लिये अनिवार्य है।

कदाचिद् देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः।
ध्यायाम्यहं च देवेशं शंकरं त्रिपुरान्तकम्।।
शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम।
उभयोरन्तरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसः।।
नरकं यान्ति ते नूनं ये द्विषन्ति महेश्वरम्।
भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्।। (दे. भा. 6/18/45-47)

अन्य शैवतत्त्व

शैवों में ही नहीं अपितु सभी प्रकार के उपासकों में शिवरात्रि व्रत प्रसिद्ध है। इस व्रत की महिमा को बताते हुए इस पुराण में कहा गया है कि इसे करनेवाला व्यक्ति दीर्घकालतक शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। जो शिवरात्रि के दिन भगवान् शंकर को बिल्वपत्र चढ़ाता है वह अनेक युगोंतक कैलास में वास करता है। पुन: श्रेष्ठ योनि में जन्म लेकर भगवान् शिव का परम भक्त होता है। विद्या, पुत्र, सम्पत्ति, प्रजा और भूमि-ये सभी उसके लिये सुलभ होते हैं।(दे. भा. 9/30/72-73)

शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः।
पत्रमानयुगं तत्र मोदते शिवमन्दिरे।।
पुनः सुयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
विद्यावान् .....।। (दे. भा. 9/30/72-73)

जो व्रती पुरुष चैत्र अथवा माघ मास में शंकरजी की पूजा करता है तथा बेंत लेकर उनके सम्मुख रात-दिन भक्तिपूर्वक नृत्य करने में तत्पर रहता है, वह चाहे एक मास, आधा मास, दस दिन, सात दिन अथवा दो ही दिन या एक ही दिन ऐसा क्यों न करे, उसे भगवान् शिव के लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है।(दे. भा. 9/30/74-75)

जो पुरुष प्रतिदिन पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवलिंग की पूजा करता है और जीवनभर इस नियम का पालन करता रहता है, वह भगवान् शिव के धाम में जाता है और लम्बे समयतक शिवलोक में प्रतिष्ठित रहता है, तत्पश्चात् भारतवर्ष में आकर राजेन्द्रपद को सुशोभित करता है।(दे. भा. स्क. 9/अ. 30/110-111)

शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिंगं च पार्थिवम्।

यावज्जीवनपर्यंतं सयाति शिवमंदिरम्।।
मृदो रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते।
ततः पुनरिहागत्य राजेंद्रो भारते भवेत्।। (दे. भा. 9/30/110-111)

रुद्राक्ष-धारण की महिमा का वर्णन करते हुए रुद्राक्षों के प्रकार, मालाओं के लक्षण और प्रकारभेद, मालाधारण की विधि, उनके फल तथा रुद्राक्ष की महान् महिमा का बड़े विस्तार से इस पुराण (स्कन्ध 11/अध्याय 3 से 7) में वर्णन किया गया है।

रुद्राक्ष धारणकर प्रणव के साथ पचांक्षर मंत्र (ॐ **नमः शिवाय**) का जप करना चाहिये। निष्कपट भक्ति के साथ प्रसन्नतापूर्वक रुद्राक्ष की माला धारण करना चाहिये। इसे धारण करना भगवान् शंकर के साक्षात् ज्ञान का साधन है। सभी वर्ण रुद्राक्ष की माला धारण कर सकते हैं। भेद यही है कि द्विज मन्त्र से करें और शूद्र बिना मन्त्र के। रुद्राक्ष धारण करने से पुरुष स्वयं भगवान् शंकर के समान हो जाता है। रुद्राक्ष की महिमा का बखान नहीं किया जा सकता। (संक्षिप्त श्रीमद दे. भ. पृ. 691)

रुद्राक्षों के वर्ण, मुखों के अनुसार भेद, उनके देवता तथा धारण करने के फल तथा विधि आदि के वर्णन इस पुराण में भी लगभग उसी प्रकार के पाये जाते हैं जैसे शिवपुराणादि ग्रन्थों में। रुद्राक्षधारी को लहसुन, प्याज, सहिजन तथा लिसौड़ा का फल आदि नहीं खाना चाहिये। ग्रहण, विषुव, संग्राम, संक्रान्ति, अयन, अमावस्या और पूर्णमासी आदि पर्वों तथा पुण्य दिवसों में सदा रुद्राक्ष धारण किये रहने से व्यक्ति सभी पापों से तुरंत छूट जाता है। विस्तृत जानकारी के लिये देखें- (दे. भा. स्क. 11/अ. 4-7)

मद्यं मांसं च लशुनं पलांडुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः।।
ग्रहणे विषुवे चैव संक्रमे अयने तथा।
.....
रुद्राक्षधारणात्सद्यः सर्व पापैः प्रमुच्यते।। (दे. भा. 11/7/40-41)

इस पुराण के एकादश स्कन्ध के 15 वें अध्याय में भस्म-माहात्म्य, भस्म-भेद, भस्मधारणविधि आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। भस्म-माहात्म्य को बड़े ही विस्तार से वर्णन करने के बाद त्रिपुण्ड्र की महिमा को भी बताया गया है। इस पुराण की भस्म माहात्म्य-संबंधी एक कथा इसी पुस्तक के द्वितीय भाग में 'दुर्वासा की शिवभक्ति' शीर्षकवाले लेख में वर्णित है। वहाँ बताया गया है कि दुर्वासा के मस्तक से झड़े हुए भस्मकण कुंभीपाक नरक को स्वर्गतुल्य बना दिये थे। नरक का स्वर्ग बनना भस्म की महिमा के कारण संभव हुआ था। (दे. भा. स्क. 11/अ. 15/64-67)

उपसंहार

इस उपपुराण में सर्वत्र देवी की ही महिमा का गुणगान हुआ है। इसके बावजूद प्रसंगवश भगवान् शिव के माहात्म्य के साथ-साथ कुछ अन्य शैवतत्त्वों की भी चर्चा इस पुराण में मिलती है। भगवान् शिव को सृष्टि, स्थिति तथा लय का मूल कारण अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के भी परम कारण, भुक्ति-मुक्तिदाता, पार्वती को अर्द्धांग में धारण करनेवाले, लक्ष्मी, कृष्ण, शुक्राचार्य आदि को वर देनेवाले, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, ज्ञान का अधिष्ठाता, मुक्ति को प्रकाशित करनेवाले तन्त्रशास्त्रों की रचना करनेवाले माना गया है। इसमें भगवान् शिव के सगुण-साकार रूप का भी वर्णन किया गया है।

इस पुराण में तीनों देवों की एकता का भी प्रतिपादन किया गया है। विशेषकर शिव एवं विष्णु की अभिन्नता का बड़े ही विस्तार से वर्णन किया गया है। शिवरात्रि व्रत, चैत्र एवं माघ मास में शिवपूजा तथा पार्थिव लिंगपूजा के फलों की भी चर्चा की गयी है। इसी प्रकार रुद्राक्षधारण की महिमा के साथ-साथ उसके मुखों के अनुसार भेद, वर्ण, उनके देवता तथा नाना प्रकार के रुद्राक्ष धारण करने के उनके अपने-अपने फलों की चर्चा तथा धारण विधि आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसे धारण करनेवाले को लहसुन, प्याज आदि नहीं खाना चाहिये। इसे पुण्य अवसरों पर धारण किये रहने से व्यक्ति सभी पापों से तुरंत छूट जाता है। रुद्राक्ष की ही भाँति इस पुराण में भस्म माहात्म्य, भस्म के भेद तथा भस्म एवं त्रिपुण्ड्र धारण की विधि आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है। रुद्राक्ष एवं भस्म संबंधी बातों का वर्णन अन्य पुराणों या ग्रन्थों के वर्णन के समान ही हैं।

अन्त में अगर हम शिव एवं देवी के अद्वैत को (अर्थात् उनके अभेद को) स्वीकार करें जैसा कि सभी शैवशास्त्रों (तथा इस देवीभागवत् में भी शिवा को शिव का अर्द्धांग मानकर उनकी एकता को माना गया है) ने माना है तो इस पुराण में भी सर्वत्र वर्णित देवी के माहात्म्य को प्रकारान्तर से शिव का ही माहात्म्य समझा जाना चाहिये। दूसरे शब्दों में इस पुराण में सर्वत्र देवी के माहात्म्य की की गयी चर्चा वस्तुतः शिव की ही चर्चा मानी जा सकती है।

ssssssss

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।।

(नार. महापु. पूर्वखण्ड 11/100)

जिस प्रकार अनजान में भी स्पर्श की हुई अग्नि जला देती है, ठीक उसी प्रकार दुष्प्रवृति अथवा कुभावपूर्वक अथवा अनिच्छा से भगवान् का स्मरण भी पापों को हरनेवाला होता है।